भारतीय संस्कृति की अनन्य आराधिका

बहन निवेदिता

—पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

भारतीय संस्कृति की अनन्य आराधिका—बहन निवेदिता

कुमारी मार्गेरेट एलिजाबेथ नोबुल का जन्म आयरलैंड के एक प्रसिद्ध पादरी घराने में हुआ था, जिससे उन्हें धार्मिक प्रेरणा मिली। उनके नाना स्वाधीनता आंदोलन के एक नेता थे, जिनसे उन्हें स्वतंत्रता के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ। इनकी शिक्षा भी धार्मिक वातावरण में हुई, जिससे उनमें धर्म के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई। साथ ही इन्हें ईसाई मत के प्रति कुछ शंका भी उत्पन्न हो गई। अतः वे सत्य की तलाश में रहने लगीं। अध्ययन के बाद उन्हें १७ वर्ष की आयु में एक ऐसे क्षेत्र में अध्ययन का कार्य दिया गया, जहाँ गरीब मजदूरों की संख्या अधिक थी। अतः उनके संपर्क से उन्हें गरीबों की दशा सुधारने तथा सेवा करने का भी अवसर मिला। बाद में उन्होंने बालकों के लिए रुस्किन स्कूल भी खोला, जिसमें खेल-खेल में शिक्षा देने का नवीन प्रयोग चलाया। जब सन् १८८५ में वे स्वामी विवेकानंद के संपर्क में आईं, तब स्वामी जी ने उस स्कूल को देखकर उनकी बड़ी प्रशंसा की। अपनी जिज्ञासा पूर्ण करने के लिए स्वामी जी ने उन्हें पूरा अवसर दिया और उनकी ८ वर्षों की लालसा पूर्ण हुई। स्वामी जी का प्रथम भाषण सुनने के बाद उन्होंने अपनी डायरी में लिखा—

"ऐसे चिंतनशील व्यक्ति का दर्शन मुझे आज तक कभी नहीं हुआ था।" दूसरे दिन स्वामी जी के वाक्य उनके हृदय में प्रवेश कर गये। "जो अनंत और असीम है वही अमूर्त है। वही शाश्वत है। उसे छोड़कर संसार की समस्त विषय वस्तु नाशवान् है, अस्थायी है, दुःखयुक्त है।" इतना होते हुए भी वे स्वामी जी के उपदेशों के बाद अपनी शंकाओं का समाधान कराती रहीं। उन्होंने इस विषय में लिखा—स्वामी जी के जीवन में ज्ञान, भक्ति और साधना का जो प्रकाश है, वह अनेकों पीड़ित, दुःखित और निराश व्यक्तियों को

जीवन और आशाएँ प्रदान करने वाला है। इस तरह का धर्म और संस्कृति संयुक्त जीवन ही सच्चा जीवन और कल्याण का मार्ग हो सकता है।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण को अर्जुन, बुद्ध को आनंद, श्री रामकृष्ण को विवेकानंद शिष्य रूप में प्राप्त हुए थे, उसी प्रकार विवेकानंद को भगिनी निवेदिता मिलीं। उनका असली नाम मार्गरेट नोबुल था और वे आयरलैंड के एक फौजी अफसर की कन्या थीं। जन्म के समय ही उनकी भक्तिमयी माता ने निश्चय कर लिया था कि—इस कन्या को ईश्वर की सेवा में निवेदित कर दूँगी किंतु यह कार्य स्वामी विवेकानंद ने किया। जब वे विदेश यात्रा करते समय इंग्लैंड पहुँचे, तब अन्य महिलाओं के समान मार्गरेट भी उनका भाषण सुनने पहुँची और इतनी अधिक प्रभावित हुईं कि उनके साथ ही भारत आने का आग्रह करने लगीं। उसी समय से उन्होंने स्वामी जी को अपने गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया।

प्रथम दर्शन ही के साथ उनके भीतर छिपे हुए संस्कार जाग उठे। उन्होंने लिखा है—"मेरे गुरु ने मेरी उत्सुकता जाग्रत् कर दी। उस समय भी मेरा मन अध्यात्मिकता से पूर्ण नहीं था, बल्कि आधुनिक संस्कारों से युक्त था। उनके भाषण ने मेरे हृदय के तारों को नहीं छेड़ा, किंतु गुरु की कृपा से यह सब संभव हो सका।" गुरू की अप्रितम कृपा और प्रेम, शिष्य की नम्रता और भक्ति दोनों ने मार्गरेट को निवेदिता बना दिया। वे आयरलैंड में उत्पन्न हुई थीं, किंतु उन्होंने भारत को अपनी जन्म-भूमि से भी अधिक प्रेम और सेवा अर्पण की। एक दृष्टि में विवेकानंद ने पहचान लिया कि—इस बालिका में कितनी प्रतिभा है ? उसका क्या स्थान है और क्या भविष्य है ? जिस प्रकार श्री रामकृष्ण ने विवेकानंद को तैयार किया था, उसी प्रकार विवेकानंद ने निवेदिता को अपने कार्य के लिए तैयार किया और केवल उनका नाम ही परिवर्तन नहीं किया, किंतु संपूर्ण जीवन को ही परिवर्तित कर, यह सिद्ध कर दिया कि महापुरुषों के संपर्क में आकर अपनी प्रतिभा और योग्यताओं को अद्भुत ढंग से विकसित किया जा सकता है।

भारत में गुरु और शिष्य का आध्यात्मिक संबंध सब संबंधों से श्रेष्ठ होता है। अन्य सांसारिक संबंधों से ऊपर उठकर दो आत्माओं का यह आध्यात्मिक संबंध जन्म-जन्मांतर तक चलता रहता है। गुरु ईश्वर का रूप होता है। गुरु की आज्ञा शिष्य के लिए वेद-वाक्य के समान होती है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में—"गुरु का स्थान माता-पिता से भी ऊँचा है। वह आध्यात्मिक शिक्षक और सर्वोपरि ईश्वर दोनों का सम्मिलित स्वरूप है। गुरु शिष्य के हृदय के गुप्त तंतुओं और गहराइयों को समझता है।" शिष्य के जीवन में प्राण और प्रकाश फूँकने वाला गुरु ही सच्चा है, पर शिष्य में भी अनुरूप पात्रता आवश्यक है। जहाँ यह संयोग मिल जाता है, गुरु-शिष्य के संबंध सार्थक हो उठते हैं।

कभी-कभी शिष्य इन सब बातों को न समझकर उनके प्रति संशय और अविश्वास कर बैठता है। किंतु गुरु अपनी कृपा और प्रेम के कारण शिष्य के अपराधों को क्षमा कर, उसे सब आपत्तियों से बचाता है। गुरु कभी-कभी शिष्य के प्रति कठोर हो जाता है, किंतु वह कठोरता भी माता के समान उसके हित में ही होती है। विवेकानंद और निवेदिता का संबंध इसी प्रकार का था। उन्होंने एक पत्र में अपनी प्रिय शिष्या को लिखा था—"मैं मृत्यु पर्यंत तुम्हारे साथ रहूँगा। चाहे तुम भारत के लिए काम करो या न करो, चाहे तुम वेदांत को मानो या छोड़ दो।" हाथी के दाँत एक बार निकल आने पर फिर भीतर नहीं जाते।

मार्गेरेट की आत्मा सदा सत्य की खोज में ही रहती थी। उनकी प्रखर बुद्धि कभी आशा और कभी निराशा के बीच झूमती रहती थी, किंतु उन्हें कोई नहीं सूझ रहा था। चेतना की इस संकटमय और उत्तेजित स्थिति के समय वे स्वामी से मिलीं। उन्होंने प्रथम भेंट और विचार-विमर्श में यह अनुभव किया कि—मनुष्य जो लक्ष्य लेकर धरती पर अवतरित होता है, उसकी प्राप्ति में भारतीय अध्यात्म स्पष्ट रूप से सहायक हो सकता है। भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं उपनिषदों में वह सामर्थ्य है, जो आत्मा को संतुष्टि और शाश्वत शांति प्रदान कर सकते हैं।

उसी समय से मार्गेरेट के मन में भारत के प्रति श्रद्धा और हिंदू धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न हो गई। उसका कारण बताते हुए वे लिखती हैं—"मैंने उनके मुख से किसी मत-विशेष का प्रतिपादन कभी नहीं सुना। समस्त मतों में निहित आधारभूत तत्त्वों को समझाने का प्रयास उन्होंने अवश्य किया था। उनके नाना ने एक बार भारत में ईसाइयत का प्रचार करने की प्रेरणा दी थी, किंतु स्वामी जी ने उन्हें भारत के निर्धनों की सेवा और निरक्षरों में ज्ञान की ज्योति जगाने तथा भारतीय नारियों को जाग्रत् करने की प्रेरणा दी। इसके लिए मार्गेरेट तुरंत भारत जाने को उत्सुक थीं, किंतु स्वामी जी उनकी उत्सुकता को सुदृढ़ बनाने के लिए उन्हें रोकते रहे। एक पत्र में भारत से उन्होंने लिखा था—"यह निश्चित है कि संसार को एक बार झकझोर डालने की सामर्थ्य तुम्हारे अंदर सुप्त रूप से विद्यमान है। स्वाध्याय और साधना द्वारा उसे जाग्रत् करने की मेरी हार्दिक इच्छा है, ताकि तुम भारतीय नारियों को वर्तमान कुंठाओं और रूढ़िवादिताओं से बचाने में मेरे साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर सको। तुम्हें देखकर इस देश की महिलाएँ अपने आपको भीतर से झकझोरेंगी और कहेंगी—"यदि कोई विदेशी नारी इस धर्म और संस्कृति से प्रेरित होकर सेवा के लिए अपना सब कुछ त्याग सकती है, तो हम क्यों पीछे रहें ? भारतीय संस्कृति के अभ्युत्थान और भावी संतति को तेजस्वी बनाने के पुण्य मिशन में हम पीछे क्यों रहें ?"

भारत के कार्यों की कठिनाइयों की चर्चा भी स्वामी जी समय-समय पर किया करते थे, जिससे मार्गेरेट अपने मन को और भी पक्का करती जाती थीं। जब सब प्रकार से वे तैयार हो गईं तब उन्होंने उनकी परीक्षा लेने के लिए लिखा—"हम सभी के लिए तुम भारत आने की अपेक्षा इंगलैंड में बैठकर उन्नति का कार्य कर सकती हो।" किंतु उससे निराश न होकर मार्गेरेट भारत आने को बेचैन हुईं। उन्होंने लिखा—"मुझे स्पष्ट बताएँ कि क्या मेरा जीवन भारत के काम आ सकता है ? मेरी इच्छा है कि भारत मुझे जीवन की पूर्णता की शिक्षा को प्रदान करे।" इस उत्कृष्टता की भावना को देखकर अंत में स्वामी जी ने लिख दिया—"अब मैं निश्चित इस मत का हूँ कि, भारत में कार्य की दृष्टि में तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है।"

आवश्यकता एक मनुष्य की नहीं, वरन् एक महिला की है, जो सिंहनी के समान हो।

इसी पत्र में उन्होंने कठिनाइयों का भी जिक्र किया था, किंतु मार्गेरेट रुकने वाली नहीं थी। उसके पिता ने मानो भविष्यवाणी कर दी थी—जबकि उनकी माता को निर्देश दिया था—"भगवान् की ओर से मार्गेरेट को एक आह्वान आवेगा। उस समय तुम बाधक न बनना, बल्कि उसकी सहायता करना।" उनकी माता ने मार्गेरेट के जन्म के पहले ही प्रार्थना कर ली थी—"यदि संतान सकुशल होती है तो तेरी इच्छा। मैं तो अपनी बच्चे को तुम्हें समर्पित करती हूँ।" और उन्होंने सच्चे हृदय से अपनी पुत्री को भारतवर्ष की सेवा करने की अनुमति प्रदान कर दी।

पात्रत्व की परीक्षा—

मार्गेरेट ने अपने एक मित्र को लिखा—"कल्पना करो कि स्वामी जी मुझे न मिले होते ! वे केवल हिमालय पर ही ध्यानरत रहते, तो मैं कभी यहाँ नहीं होती।" स्वामी जी ने भी अंतर् दृष्टि से समझ लिया कि भारत में मेरा कार्य करने के लिए यही महिला उपयुक्त है। जब उन्होंने अपना जीवन उनके कार्य में लगाने की इच्छा प्रकट की, तब स्वामी जी ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया, "हाँ ! तुम्हारा स्थान भारत में ही है, किंतु अभी उसका समय नहीं आया। अभी तो उसके लिए अपने को तैयार करो।" भारत लौटने पर स्वामी जी ने लिखा—"अब मुझे निश्चय हो गया है कि भारत में तुम्हारे लिए बहुत बड़ा भविष्य है। मुझे किसी पुरुष की नहीं, किंतु एक ऐसी स्त्री की आवश्यकता थी, जो भारतवासियों और विशेषकर स्त्रियों के लिए सिंहनी के समान काम करे। भारत अभी महान् महिलाओं को उत्पन्न नहीं कर सकता। अभी उसे दूसरे देशों से उन्हें उधार लेना होगा। तुम्हारी शिक्षा, ईमानदारी, पवित्रता, प्रेम, निश्चय और सबसे ऊपर भारतीय संस्कृति के प्रति अडिग निष्ठा ऐसी आवश्यक महिला का रूप बना देता है, जो भारत के लिए आवश्यक है।"

स्वामी जी का यह कथन आज भी ध्वनित होता है और सत्य प्रतीत होता है। मार्गेरेट बड़े उत्साह और आशा के साथ भारत में

आईं। अपने गुरु के सम्मुख वे उनके कार्य में रहकर जी-जान से लग गईं। किंतु गुरु ने उन्हें कार्य के संबंध में कोई स्पष्ट आदेश नहीं दिया। जब वे बहुत अधीर हो गईं, तो गंगाजी को इशारा करते हुए उन्होंने कहा—"तुम्हारे चारों ओर जो कुछ हो रहा है, उसे देखो, उसे सुनो। कोई योजना मत बनाओ। पश्चिम के राजसिक क्रियाकलाप में पली हुई मार्गेरेट को भारतीय गुरु की यह शांति पसंद नहीं आई। भारतीय आध्यात्मिकता उनकी आत्मा में नहीं समाई। स्वामी जी तो अपनी शिष्या को दृढ़ आधार पर स्थापित कर रहे थे और भारतीय ढाँचे में ढाल रहे थे। उनकी तेज प्रतिभा और स्वतंत्र आत्मा को भारतीय आदर्शों के अनुरूप परिवर्तित कर रहे थे। विदेशी संस्कारों और दोषों को निकाल कर उनमें भारत की सेवा और जीवन के आदर्श भर रहे थे।

मार्गेरेट के लिए मुख्य बाधा स्वामी जी का व्यक्तिगत आकर्षण ही था। उनके लिए स्वामी जी का व्यक्तित्व ही मुख्य था, भारत की सेवा नहीं। स्वामी जी की सेवा को ही वे भारत के सेवा समझती थीं। किंतु स्वामी जी चाहते थे कि मार्गेरेट इस संकीर्ण क्षेत्र में ऊपर उठकर अनंत और अव्यक्त चेतना के स्तर पर पहुँचे। इसलिए उन्होंने निवेदिता को साधना के पथ पर धीरे-धीरे आरूढ़ किया और कहा—"तुमको अपने पैरों पर खड़े होना है। मेरी या किसी अन्य की छाया में नहीं चलना है। प्रेम की उत्कटता तो ठीक है, किंतु उसके साथ कोई बंधन उचित नहीं। किसी एक के प्रति अपना सब कुछ अर्पण करते ही हमारा कार्य समाप्त हो जायेगा। हमारा मार्गदर्शक शरीर नहीं, आत्मा; व्यक्त नहीं, अव्यक्त; कोई व्यक्ति विशेष नहीं, ब्रह्म होना चाहिए।"

स्वामी जी का दूसरा प्रयत्न यह था कि निवेदिता भारतीय नारी की तरह शिक्षित हो। पश्चिमी शिक्षा और जीवन के संस्कारों से मुक्त होकर वे भारत को अपनी जन्म-भूमि के समान प्रेम करने लगें। अभी भारत को उन्होंने बाहर से देखा था। उसकी अशिक्षा, दरिद्रता आदि ने उन्हें दुःख अवश्य पहुँचाया था, किंतु वे उन्हें पश्चिमी सभ्यता के अनुसार ऊपरी तरीके से दूर करना चाहती थीं। किंतु स्वामी जी चाहते थे कि पहले वे अपने हृदय में गोता

लगाकर अपनी आत्मा को पहचानें, उससे शक्ति ग्रहण करें और फिर कार्य क्षेत्र में निःस्वार्थ और फलाशा रहित ईश्वर सेवा में परिणत हों। उनका पहला कदम है—गुरु की आज्ञा का पालन। इसी अनुशासन से उनमें कार्य करने की स्वतंत्रता उत्पन्न होगी।

उन्होंने आज्ञा दी कि हिंदू स्त्री के समान रहो। वेश-भूषा, आहार-व्यवहार, रहन-सहन सभी में उनका अनुकरण करे। पुरुषों से संपर्क कम रखो, स्त्रियों से संपर्क बढ़ाओ। अपनी पश्चिमी धारणाओं और भावनाओं को नियंत्रित रखो। अपने मन को ध्यान और एकाग्रता में लगाओ। मार्गरेट ने साड़ी पहनना, जमीन पर सोना और उँगलियों से खाना आदि सब भारतीय प्रथाओं का पालन करना प्रारंभ किया। मार्गरेट ने सोचा—विलायत में भाषण देने वाले स्वामी विवेकानंद और भारत में तपस्या में निरत और प्रशांत विवेकानंद में कितना अंतर है ? किंतु अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति और भक्ति के कारण वे सब कठोर साधनाओं का पालन कर स्वामी जी की कठिन कसौटी पर खरी उतरीं। दो माह बाद स्वामी जी ने मार्गरेट को अपनी शिष्या के रूप पर दीक्षित कर उनका नाम निवेदिता रक्खा। उनकी माँ का संकल्प पूरा हुआ और वे सचमुच में निवेदिता बन गईं।

गुरुजन शिष्यों की योग्यताएँ परखते हैं और फिर उन्हें विकसित करने का मार्ग दर्शाते हैं। सुषुप्त शक्तियों का जागरण इसी तरह होता है। उन्हें निवेदिता की वक्तृत्त्व शक्ति का पता था, अतः उन्होंने निवेदिता को भाषण देने के लिए प्रेरित किया। जब पहले-पहल कलकत्ते के एलबर्ट हाल में भगिनी निवेदिता का सुंदर और ऊँचा व्यक्तित्व भारतीय वेष-भूषा में जनता के सामने आया तब वह मंत्रमुग्ध हो गईं। स्वामी जी ने उनका परिचय कराते हुए कहा—"भगिनी निवेदिता भारत को इंगलैंड की नई देन है।" इसके बाद वे कालीघाट और ब्रह्म-समाज की सभाओं में भाषण देने लगीं और पत्रों में लेख भी लिखने लगीं। वक्ता और लेखिका के रूप में उनकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी, किंतु इससे उनकी शांति तनिक भी भंग न हुई।

अब स्वामी जी ने निवेदिता को भारत का परिचय कराना शुरू किया। स्वामी जी अपने शिष्यों के साथ हिमालय की ओर रवाना हो गए। वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों, शांति तथा नीरवता से निवेदिता के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। स्वामी जी के अधिक निकट संपर्क में वे रहने लगीं, किंतु साथ ही उनके मन पर एक उदासीनता-सी छाने लगी, क्योंकि स्वामी जी उनसे बहुत कम बोलते और उनके काम में भी कोई रस न लेते थे। इससे उन्होंने अपने मन की व्यथा एक दिन स्वामी जी से कही। उसके उत्तर में उन्होंने कहा—"बात ठीक है, अब मैं वन में एकांत सेवन के लिए जा रहा हूँ। लौटकर अपने साथ शांति लाऊँगा।" तब निवेदिता की समझ में आया कि अपने साथ मोह तोड़ने के लिए ही स्वामी जी ऐसा कर रहे हैं। जब स्वामी जी लौटे तो उनके साथ निवेदिता की शांति ही लौट आई। अपने एक मित्र को उन्होंने लिखा—"मुझे आध्यात्मिकता की शिक्षा मिल रही है, जो कि सबसे अधिक प्राप्तव्य वस्तु है। मनुष्य-प्रेम के समान ईश्वर-प्रेम प्राप्त करना आत्मा के लिए आवश्यक है।"

इसी शिक्षा के लिए स्वामी जी ने यह सुशांत स्थान और समय चुना था। निवेदिता को अपने पैरों पर खड़े होना आवश्यक है। इसी विचार से उन्होंने ऊपर से यह कठोरता धारण की थी। हिमालय में उन्होंने जो शांति प्राप्त की थी, वही वे अपने शिष्यों को प्राप्त कराना चाहते थे। अभी निवेदिता की परीक्षा पूरी नहीं हुई थी। तपस्या पूरी करने के लिए स्वामी जी ने अमरनाथ की कठिन यात्रा की ओर अपने पैर बढ़ाए। निवेदिता उनके पीछे-पीछे चलीं। गुरु प्रसन्न और आनंदित, शिष्या शांत और थकित। अमरनाथ की तुषार-निर्मित अंधेरी गुफा में प्रवेश कर स्वामी जी शिवजी को प्रणाम कर निवेदिता के रूप में एकमात्र भेंट समर्पित की। इस सबका कोई अर्थ निवेदिता की समझ में नहीं आया कि उन्हें नंगे पैरों बर्फ पर चलाकर ऊँचे पर्वतों को पार कराकर इस अँधेरी गुफा में क्यों लाया गया ? और उन्होंने गुरु से कड़े शब्दों में इसका प्रतिवाद किया। आँखों में आँसू भरकर स्वामी जी ने शांत भाव से कहा—"निवेदिता मुझ में वह शक्ति नहीं कि जो तुम चाहती हो और वह तुम्हें दे सकूँ। अभी तुम्हें

यात्रा का महत्त्व नहीं मालूम होगा। किंतु बाद में इसका रहस्य प्रकट होगा। माँ काली को पुकारो, वे तुम्हारे पास आकर तुम्हें शक्ति देंगी।"

ये शब्द कहकर स्वामी जी अज्ञातवास में चले गए। अब निवेदिता ने काली माँ का ध्यान करना शुरू किया। उन्हें अपनी गल्ती अनुभव होने लगी और समझ में आया कि उनके गुरु किस प्रकार उनके दोषों का निराकरण कर उन्हें अपनी ओर खींचते जा रहे हैं। अपने दोषों को देखना भी महत्त्वपूर्ण साधना है। इस साधना से पूर्वकृत पापों और मानसिक दुर्भावों का परिमार्जन होता है। आत्म-चिंतन और शोध की यह प्रक्रिया ही व्यक्ति को आत्म-सत्ता की महत्ता और सान्निध्यता तक पहुँचा देती है। साधक अपने आपको शक्ति का अकूत भंडार अनुभव करने लगता है। काली के ध्यान से निवेदिता की सब निराशा और दुःख दूर होकर हृदय में आनंद भर गया। स्वामी जी के लौटने पर निवेदिता ने अपना सिर उनके चरणों पर रखकर कहा—"अब मैंने अपनी दिव्य माता को पहचान लिया है।" निष्कलुष हुई उनकी आत्मा ही माँ काली थी, जिसे पाकर वे विभोर हो उठीं।

इस यात्रा में स्वामी जी अपने शिष्यों को धार्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय कराते। अपनी ज्ञान-दृष्टि से वे निवेदिता के हृदय में प्रवेश कर उनकी शंकाओं का समाधान करते और उनके पश्चिमी संस्कारों की उखाड़कर भारतीय संस्कारों को जमाते रहते थे। एक दिन निवेदिता ने भारत से अपने देश की तुलना की, तो स्वामी जी ने फटकारा। तुम इस प्रकार क्यों तुलना करती हो, जो वहाँ के लिए उपयुक्त है, वह यहाँ के लिए नहीं हो सकती। इस प्रकार की देश-भक्ति एक पाप है। क्या यह हमारी संकीर्णता नहीं है कि हम केवल आयरलैंड, इंगलैंड या भारतवर्ष को ही अपनी जन्म-भूमि मानें ? विशाल पृथ्वी हमारी माता और संपूर्ण विश्व की आत्मा ही हमारा उपास्य है। उस महत्त्व की ओर उन्मुख होकर अपने देश, भाषा और भूमि की संकीर्णता का परित्याग करना ही उचित है।

कुछ ही दिनों बाद निवेदिता ने लिखा—"मेरी शिक्षा अभी चल रही है। दृष्टिकोण साफ होता जा रहा है। गुरु की कृपा से मैं प्रकाश पा रही हूँ। मेरे जो भ्रम रास्ते को रोक रहे थे, वे जाग्रत् प्रतिभा के

प्रकाश में दूर होते जा रहें हैं। आश्चर्य तो यह है कि गुरु केवल प्रकाश देते हैं, अपने विचार लादते नहीं हैं। यही उनकी शिक्षा का मुख्य सिद्धांत है।"

स्वामी जी का दूसरा उद्देश्य निवेदिता के राजनैतिक विचारों में परिवर्तन करना था। वे समझती थी कि भारत अंग्रेजी साम्राज्य का स्थायी अंग है। इस विचित्रता और विविधतापूर्ण देश की एकता बाहरी शक्ति के द्वारा ही संभव है। अंग्रेजी राज्य ने भारत का बहुत उपकार किया है। भारत का स्वतंत्रता चाहना स्वाभाविक है, किंतु उसे प्राप्त करने में सैकड़ों वर्ष लग जायेंगे। इसलिए उनके जीवन का उद्देश्य भारत और इंगलैंड के बीच प्रेम संबंध स्थापित करना था। इस पर स्वामी जी ने कहा कि—"काम करो, अभीप्सा करो, शायद तुम्हें रास्ता मिल जाय। दो साल पहले मैं भी ऐसे ही विचार रखता था।" और बहुत जल्दी इस विषय में निवेदिता का स्वप्न दूर हो गया। ज्यों-ज्यों निवेदिता भारत में अंग्रेजों के संपर्क में आती गई त्यों-त्यों वे उनकी साम्राज्य-लिप्सा को समझने लगीं। सबसे पहले धक्का तब लगा, जब शासन ने विवेकानंद द्वारा संस्कृत कॉलेज के लिए भूमि देने से इनकार कर दिया। इससे अंग्रेजों का अभिमान स्पष्ट हो गया। साथ ही कारखानों के मजदूरों, रेल के यात्रियों आदि के साथ किए गये दुर्व्यवहार भी उनके सामने आए, तब उनकी आँखें खुलीं।

स्वामी जी का यह तो बाहरी शिक्षण था, वे तो निवेदिता के अंतरंग को बदलना चाहते थे। भीतर हृदय बदल जाने से बाहरी परिवर्तन में देर नहीं लगती। इसलिए उन्होंने आदेश दिया कि तुम्हें आंतरिक और बाह्य जीवन में एक ब्राह्मण ब्रह्मचारिणी के समान रहन। होगा और अपने जीवन को अपने भूतकाल और उसकी स्मृति को ईश्वर के चरणों में अर्पित करना होगा।

यात्रा समाप्त होने पर निवेदिता कलकत्ता लौट आईं। वे श्री शारदामणि देवी के समीप रहने लगीं। उनकी साधुता, पवित्रता और मधुरता से वे बहुत प्रभावित हुईं। अब तो स्वामी जी ने उन पर और भी कठिन तपस्या के नियम लगा दिए और कहा—"अब तुमको एक हिंदू विधवा के समान जीवन-यापन करना होगा। तुम्हें किसी से

मिलना-जुलना बंद कर एकांत में रहना होगा। अपने मन की चंचलता को नियंत्रित करो और चेहरे पर कोई भाव प्रकट न होने दो। बिना किसी भावना के अपने आपको पहचानो।"

कुछ दिनों बाद लड़कियों के लिए पाठशाला खोली गई और निवेदिता को अपने मन का काम मिल गया। अब स्वामी जी ने उनसे कहा कि—तुम्हें अब कोई शिकायत नहीं करनी चाहिए कि प्रार्थना और ध्यान के लिए अब समय नहीं मिलता। कार्य ही को अपने जीवन का ध्येय समझो। इसी लक्ष्य की ओर तुम्हें ले जाना चाहता हूँ। मेरा ध्येय न तो रामकृष्ण का है, न वेदांत का है, वरन् जनता में मनुष्यता को जगाना है। विदेशों में यह कार्य स्त्रियों ने किया है। वह दिन कब होगा जब भारतीय नारियाँ अपनी कमजोरी को दूर कर अपना ध्येय पूरा करेंगी।

इसी बीच कलकत्ता में भयानक प्लेग फैला और निवेदिता ने निर्भीकता, आत्म-त्याग और एकाग्रता से जनता की सेवा की। उनकी व्यवस्था को देखकर एक शिष्य से स्वामी जी ने कहा—उस पर तरस मत खाओ, अब वह सब बातों से ऊपर उठकर भारत के प्रति निवेदित हो गई है। मैंने उसे बनाने में इतना समय दिया है, जितना किसी को नहीं दिया। अब निवेदिता पत्रों को लेख लिखने लगीं। उनके द्वारा लिखित प्लेग का हाल पढ़कर जनता स्तंभित रह गई। वे ब्रह्म-समाज के साथ काम करने लगीं। रवींद्रनाथ ठाकुर के साथ भी इनका संपर्क स्थापित हो गया।

भारत में स्त्रियों के लिए काम करने की प्रेरणा भगिनी निवेदिता को किस प्रकार मिली, इस पर वे लिखती हैं कि—

एक बार बातचीत करते समय मेरी तरफ उन्मुख होकर उन्होंने कहा—"अपने देश की स्त्रियों के लिए मैंने योजनाएँ बनाई हैं, जिनसे मुझे बड़ी सहायता मिल सकती है।" मैंने योजना के बारे में उस समय नहीं—किंतु कुछ दिन बाद जब मैंने उनसे 'नंदन' को स्वच्छ बनाने की बात कही, तब वे बोल पड़े—"तुमने नगर को सुंदर बनाने के लिए बहुत से नगरों पर बमबारी की है।" ये शब्द अब तक मेरे कानों में गूँजते रहे। एक बार उन्होंने फिर कहा—"अंग्रेज लोग एक छोटे-से द्वीप में पैदा हुए हैं और वे उसी में सुंदर जीवन बिताना

चाहते हैं।" तब मुझे यह बात अपने संबंध में ठीक लगी कि, मेरे विचार कितने संकुचित हैं ? इसी के बाद मैंने स्वामी जी कार्य में सहायता देने की इच्छा प्रकट की। उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ, किंतु वे बोले—"मैं तो अपने कार्य को पूरा करने के लिए २०० बार जन्म लेने को तैयार हूँ।" अभी तक ये विचार मेरे मन में बैठे हुए हैं।

नारी शिक्षा का श्रीगणेश एक कन्या विद्यालय से कराया गया। काली पूजा की पुण्य तिथि से बोसपारा लेन से इसका शुभ आरंभ हुआ। माँ शारदा देवी ने आशीर्वाद दिया, किंतु कट्टरपंथियों ने इसका कम विरोध नहीं किया। एक विदेशी महिला को कोई अपने मकान में प्रवेश देने को तैयार न था और उसके संरक्षण में अपनी लड़कियों को पढ़ाना कोई पसंद न करता था। बड़ी कठिनाई से दो-चार विवेकशील अभिभावकों ने अपनी कन्याएँ भेजीं। पर जब लोगों ने नारी-शिक्षा के महत्त्व को समझना शुरू किया तो यह संख्या भी बढ़ने लगी, किंतु बड़ी बाधाओं को पार कर ही इस शाला की संख्या बढ़ी। इस प्रकार जिस दिन कालीघाट के कालीमंदिर में स्वामी जी ने निवेदिता को भाषण देने के लिए निमंत्रित किया, उस दिन कट्टरपंथियों का विरोध और भी बढ़ गया। किंतु स्वामी जी के आदेशों के अनुसार जब उन्होंने नंगे पैर से मंदिर में प्रवेश किया और अपने भाषण में महाशक्ति के प्रति अपने हृदय के भावों को व्यक्त किया तब कहीं लोगों का विरोध शांत हुआ। बाद में चलकर "काली दी मदर" नामक पुस्तक की रचना की तो लोगों की श्रद्धा और बढ़ गई।

प्लेग के समय निवेदिता ने अपने प्राणों को हथेली पर रखकर लोक-सेवा की। उसके संबंध में सर जगदीशचंद्र बसु ने अपनी पत्नी को एक पत्र में लिखा था—"अनेक लोगों को स्मरण होगा कि इस समय कितना भयंकर आतंक फैल गया था। रेलें तथा स्टीमर भागने वाले लोगों से भरे रहते थे। जिस समय आतंक अपनी चरम सीमा पर था—उस समय भगिनी निवेदिता सहायता कार्य में जुटी थीं। उन्होंने नवयुवकों के एक दल का संगठन किया।"

श्री रवींद्रनाथ ठाकुर उनके स्थान पर काव्य चर्चा करने आए, इसी बीच बैलूर मठ से उनके लिए बुलावा आया। हर्ष के साथ

उन्होंने वह समाचार गुरुदेव को सुनाया। गुरुदेव ने मन में कहा— निवेदिता को अपना चुना हुआ ईश्वर मिल गया। ब्रह्म-समाज के साथ उनका संपर्क अधिक समय तक नहीं चला, इससे सुरेंद्रनाथ, जगदीशचंद्र बसु तथा अवनींद्रनाथ ठाकुर सरीखे मित्र अवश्य प्राप्त हुए, जिनके द्वारा उनका संबंध स्वदेशी आंदोलन से हो गया।

अब तो निवेदिता की सार्वजनिक सभाओं में बोलने का निमंत्रण मिलने लगा, इतने दिनों तक दबी हुई शक्ति एक प्रवाह के रूप में निकलने लगी। स्वामी जी ने आज्ञा दी कि, तुम्हें काली माँ के विषय में बोलना है। शांत भाव से निवेदिता ने भाषण दिया, जिसकी श्रोताओं ने बड़ी प्रशंसा की। कालीघाट के पुरोहितों ने भी उन्हें बोलने के लिए बुलाया। स्वामी जी की अध्यक्षता में भाषण होना था, किंतु उन्होंने निवेदिता को अकेले ही जाने का आशीर्वाद देकर भेजा—"सदा याद रखना कि तुम माँ काली की सेविका हो। निवेदिता नंगे पैरों से चलकर कालीघाट पहुँची। उनके भाषण से जनता मंत्रमुग्ध हो गई। निवेदिता को भी विश्वास हो गया कि माँ काली की कृपा हमें प्राप्त हो गई है। इस प्रकार स्वामी विवेकानंद ने बड़ी सावधानी, प्रेम और संयम के साथ निवेदिता को आंतरिक और बाह्य संसार में भविष्य में अपना कार्य करने के लिए तैयार किया।

ज्ञान-साधना और सेवा का श्रीगणेश—

स्वामी जी अचानक बीमार पड़ गये। कार्य की अधिकता ने स्वामी जी को कमजोर बना दिया। निवेदिता को घर भेजना आवश्यक था, किंतु आर्थिक प्रश्न सामने था। इसी समय अमेरिका से उन्हें निमंत्रण मिला और वे निवेदिता के साथ रवाना हो गये। उन्होंने कहा—"मैं तुम्हारा भूत और भविष्य दोनों देख रहा हूँ, किंतु इस समय तुम्हें नम्र और आज्ञाकारी बनना है।" जाते समय निवेदिता ने दक्षिणेश्वर में श्री रामकृष्ण की प्रिय पंचवटी में बैठकर प्रार्थना की—"माँ ! स्वामी जी को शांति और आराम दीजिए और उनका कष्ट मुझे दीजिए। मैं उनकी पूजा करती हूँ, उनसे प्रेम करती हूँ, उनके व्यक्तित्त्व से प्रेम करती हूँ। जीवनपर्यंत मैं उनके लिए जीऊँगी और काम करूँगी।"

समुद्र की स्वास्थ्यप्रद वायु के प्रभाव से स्वामी जी का स्वास्थ्य सुधरने लगा। शिष्या भी प्रसन्न मुद्रा में रहने लगीं। उनके घनिष्ट संबंध से वे अपने को धन्य मानने लगी। चुपचाप उनके पास बैठने, उनके साथ डेक पर घूमने, उनके ज्ञान-भंडार से अमूल्य रत्न संग्रह करने से निवेदिता को बड़ा लाभ हुआ। उनका आध्यात्मिक प्रभाव अज्ञात रूप से निवेदिता पर पड़ता रहा। जो कि मन और वाणी से कहीं परे था। स्वामी जी उनके हृदय में प्रवेश कर उनके दोषों को एक-एक कर निकालना और विदेशी संस्कारों के बदले भारतीय संस्कार भरने का काम शुरू किया। इससे उनके जो भी रहे-सहे दोष थे—वे सब निकल गए, उनका मोह और वासनाएँ भी दूर हो गईं। यह स्वर्ण अवसर उनके लिए एक अलभ्य लाभप्रद सिद्ध हुआ। स्वामी जी से वे बार-बार पूछतीं—अपूर्णता किस प्रकार दूर की जाए ? पूर्णता कैसे प्राप्त की जाए ? शांति का अवतरण किस प्रकार हो ? स्वामी जी का एक ही उत्तर था—बिना किसी भावना के अपने आपको पहचानने का प्रयत्न करो, यही महान् रहस्य है। कोई चिंता मत करो, अशांति को दूर कर अपनी शक्ति में प्रतिष्ठित हो। मुक्ति आप से आप आयेगी, किंतु उसके लिए त्याग अनिवार्य है।

छह सप्ताहों के बीच निवेदिता ने अपने गुरु के असीम ज्ञान भंडार को आत्मसात् कर लिया। तत्त्व ज्ञान, इतिहास, धर्म, संस्कृति, तपस्या, शिक्षा, मनुष्यता और साधना कोई भी ऐसा नहीं था, जिस पर गुरु-शिष्य में चर्चा न हुई हो। इन सबके ऊपर गुरु की वाणी ध्वनित होती थी। "माँ ! मैं निर्भय बनूँ—इसी उपनिषद् के मंत्र को मैंने बार-बार उच्चारण किया है। यह आत्मा बलहीनों के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती। मेरा आदर उस योद्धा संत के लिए है, जिसने स्वतंत्रता संग्राम में मरते समय कहा था .... तुम भी वही हो।"

इस प्रकार जहाज लंदन पहुँचा और वहाँ से स्वामी जी अमेरिका चले गए। निवेदिता कुछ दिन बाद इनकी सेवा में पहुँची, वहाँ इनका काम धन संग्रह करना था और अपने भाषणों द्वारा काफी धन-संग्रह भी किया। पश्चिमी जनता में इस बात की उत्सुकता थी कि, एक विदेशी महिला भारत को किस प्रकार देखती है ? इस बीच स्वामी जी निवेदिता को अनेक विषयों की शिक्षा दिया करते थे। एक

दिन उन्होंने कहा—देखो, एक तत्त्व है प्रेम और दूसरा तत्त्व है—मिलन। मिलन प्रेम से श्रेष्ठ है। जिसे हम प्रेम करते हैं, वह अभी अपना नहीं बना है। यही ज्ञान और भक्ति में अंतर है। किंतु निवेदिता एक ओर गुरु के वचनों से शक्ति-संग्रह करती जाती थीं और दूसरी ओर उन्हें यह भय लगता था कि गुरु के बिना मैं कैसे रहूँगी ? अब उनका प्रेम गहन और शुद्ध हो गया था। वासना के स्थान पर उसमें उत्सुकता आ गई थी। उन्होंने कहा—अब वे मेरे संपूर्ण जीवन हैं, मैं कम होने के बदले अपने प्रेम में अधिक समीप हो गई हूँ।

अमेरिका में विविध कार्य-कलाप में व्यस्त रहने के कारण स्वामी जी का स्वास्थ्य फिर गिरने लगा था। वे भारत लौटने के लिए उत्सुक हो रहे थे। उन्होंने एक दिन निवेदिता से पूछा—"और कितने दिन यहाँ रहोगी, अपना असली कार्य कब शुरू करोगी ?" प्रश्न सुनकर निवेदिता स्तब्ध रह गई। उन्होंने शांत स्वर में कहा—मैं आपकी आज्ञा से यहाँ आई थी। मैं तुरंत चलने को तैयार हूँ।" उन्होंने एकाएक श्रीमती बुल के कमरे में निवेदिता के साथ प्रवेश किया। सब शिष्याएँ चकित हो गईं। उन्होंने दोनों हाथ पसारकर कहा—"मेरी पुत्रियों, मैं आ गया हूँ !" फिर श्रीमती बुल की कमर में अपना शाल लपेटते हुए कहा—"तुम संन्यासी हो।" फिर दोनों के सिरों पर हाथ रखते हुए कहा—"मैं अपनी सारी शक्ति जो मुझे गुरु से मिली थी, तुम्हें दे रहा हूँ और मैं शांति में रहने जा रहा हूँ।" निवेदिता उनके चरणों में गिर गईं उन्हें लगा कि एक सर्वग्रासी शक्ति उसमें प्रवेश कर रही है। उनका शरीर, तर्क, विवेक और चेतना सब लुप्त हो गई हैं। अपने सिर पर उन्होंने गुरु के गरम, भारी और शक्तिशाली हाथों का अनुभव किया, मानो सर्वोपरि सूर्य के समान हाथ हों। उन्हें लगा कि वह सचमुच ब्रह्मचारिणी है। गुरु ने आदेश दिया था कि—तुम्हें जीवन भर ब्रह्मचारिणी रहना है।

इसी प्रकार एक दिन श्री रामकृष्ण ने विवेकानंद के सिर पर हाथ रखकर कहा था—आज मैंने सब कुछ दे डाला है और मैं फकीर हो गया हूँ।

निवेदिता हर्ष से विह्वल हो गईं, किंतु उनमें एक भय भी समा गया। "इतनी शक्ति अपने शिष्य को देने के बाद श्री रामकृष्ण केवल डेढ़ वर्ष तक ही जीवित रहे थे। क्या मेरे गुरु भी ऐसा ही करना चाहते हैं ? मैं जानती हूँ कि वे कितने कष्ट में रहे हैं। यदि यही उनकी इच्छा है तो मैं कभी उनके रास्ते में न जाऊँगी। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि उनकी सेवा में कुछ धन अर्पण कर सकूँ।" इस प्रकार निवेदिता अपने गुरु से तन्मय हो गई थीं। उनकी इच्छा केवल उनके कार्य में सहायता करने की थी। धन संग्रह बहुत कठिनाई से हो रहा था। निराशा ने उन्हें घेर लिया, फिर गुरु के वचनों का उन्हें स्मरण हुआ—"अपनी शक्ति पर भरोसा रखो। याद रखो, जिसके पास कुछ मौलिक तत्त्व हैं, उसे संसार अवश्य सुनेगा। धीरे-धीरे सब बाधाएँ दूर हो गईं। निवेदिता की कीर्ति चारों ओर फैलने लगी और धन एकत्रित होने लगा। निवेदिता के मुख से भारत की वाणी सुनकर गुरु का हृदय गद्‌गद् हो गया।

अमेरिका में काम समाप्त कर निवेदिता फ्रांस गईं। वहाँ स्वामी जी के दर्शन हुए, साथ ही प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु भी मिले, जो कि विज्ञान परिषद् में भाषण देने आए थे। इस अवसर पर स्वामी जी ने एक ऐसी बात की कि जिससे निवेदिता को बहुत धक्का लगा। प्रसिद्ध गायिका ऐमा कालवे का गायन सुनने जा रहे थे। निवेदिता ने उसका विरोध करते हुए कहा—स्वामी जी, यदि आप ओपेरा में जायेंगे तो लोगों को बहुत धक्का लगेगा और आपके विरुद्ध आंदोलन कर बैठेंगे। स्वामी जी को बहुत आश्चर्य हुआ, किंतु कोई उत्तर न देकर वे केवल मुस्करा दिए। बाद में वे जब कालवे स्वयं स्वामी जी से मिलने आईं, तो उससे फ्रांस का राष्ट्र-गीत गाने को कहा। निवेदिता ने फिर विरोध किया। स्वामी जी यह तो एक युद्ध का गीत है, इसमें बंदूकों की गड़गड़ाहट और योद्धाओं की चीख-पुकार के सिवाय और कुछ नहीं है। इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया—

"मैं तो इसी प्रकार का गीत चाहता हूँ। तुम नहीं देखतीं कि इस गीत में कितनी वीरता, कितना देश प्रेम और कितना त्याग भरा है ? इसमें एक साहस की भावना है। देश प्रेम और त्याग की भावना

भरी हुई है। मैं यह गीत अपने मठ के साधुओं को भी सिखाऊँगा।" यह बात निवेदिता को अनुचित लगी और वह अपने काम से उदासीन होने लगी। स्वामी जी ने केवल यह कहा—"अब मैं स्वतंत्र हो गया हूँ। मैं जन्म-जात स्वतंत्र हूँ। मैं फिर बालक बन गया हूँ।"

गुरु और शिष्या के बीच मतभेद बढ़ता ही गया। एक दिन स्वामी जी ने कहा—तुम बहुत हठीली हो गई हो, तुम्हारे कार्यों में इच्छा-शक्ति प्रकट होती है, अब दैवी माता तुम्हें सम्हालेगी। कुछ दिन एकांत वास करो, क्योंकि तुम अच्छे और बुरे का भेद करने लगी हो, तुम्हारे भीतर के रूपों के सभी ढाँचे फूटने चाहिए—तभी तुम्हारी आध्यात्मिकता प्रवाहित होगी। इस फटकार से निवेदिता की आँखें खुलीं, गुरु-भक्ति और उसके पूर्वाग्रहों में क्या भेद है ? इसका उन्हें पता लगा। अपने कार्यों में वे ईश्वर प्राप्ति के बदले स्वयं अपनी संतुष्टि चाह रही थीं। गुरु को असंतुष्ट करने की वजह आत्म-संतोष पाना चाहती थीं। उनका अहम् बहुत बढ़ गया था, इस कारण गुरु के कार्य में भी गुण-दोष देखने लगी थीं। एक पत्र में उन्होंने अपनी भावना प्रकट की, उसके उत्तर में स्वामी जी ने लिखा—तुम समझती हो कि—मैं तुम्हारे साथियों से ईर्ष्या कर रहा हूँ, किंतु तुम्हें मालूम होना चाहिए कि, मैं बिना ईर्ष्या, लोभ और शासन की इच्छा के उत्पन्न हुआ हूँ। चाहे जो दोष मुझमें हों उनमें सिर्फ चुनाव कर सकती हो।

प्रश्न यह था कि निवेदिता सरीखी शिष्या जो कि गुरु के प्रति इतनी अनुरक्त हो, उनके गुण-दोषों को देख सकती हैं। वैसे गुरु ने उन्हें आत्म-विकास के लिए काफी स्वतंत्रता दे रखी थी। अपने गुरु श्री रामकृष्ण ही के समान वे अपनी शिष्या को तैयार कर रहे थे। यह सच है कि मनुष्य बिना स्वतंत्रता के आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता। वे कुछ राजनैतिक विचारों और शासन प्रणालियों के कट्टर विरोधी थे। दूसरे निवेदिता का प्रेम और श्रद्धा चाहे जितनी अधिक हो, उसकी चेतना में गुरु से अभी तक एकरूपता प्राप्त नहीं की थी। श्री अरविंद जिस बात को चेतना की एकता कहते हैं, उसी को विवेकानंद ज्ञान कहते थे—ऐसा ज्ञान जिसके द्वारा एक व्यक्ति की चेतना दूसरे व्यक्ति की चेतना में मिल जाती है। निवेदिता की चेतना अच्छे और बुरे भावों से ऊपर नहीं उठ सकी थी। उसके

परिवर्तन के बाद भी निवेदिता के स्वभाव में पुराने संस्कारों की छाप अवश्य थी।

आधुनिक विचार वालों के लिए स्वामी जी के कुछ कार्य शिष्यों को युक्तियुक्त नहीं जान पड़ते थे। निवेदिता ने अपने गुण-दोष स्वामी जी को बताए। किंतु उन्हें भी उसके दोष बताने चाहिए थे। न बताने का कारण यह हो सकता है कि उन्हें ऐसा भाष होने लगा था कि उनका जीवन-कार्य समाप्त होने को है। इसलिए वे शिष्यों की मानसिक शुद्धि पर बल देते थे।

स्वामी जी के पत्र ने निवेदिता को बहुत लज्जित किया, वे पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगीं, किंतु इस तपस्या से उनका पुनर्जन्म ही हुआ। भारत लौटने के पहले स्वामी जी आशीर्वाद देते हुए कहा—"नेता को चाहिए कि जब कार्यकर्ता तैयार हो जाएँ, तब उन्हें दूसरी जगह चले जाना चाहिए। अपने सामने वह उन्हें स्वतंत्र नहीं बना सकता। अब मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं रहा। मैंने अपनी सारी शक्ति तुम्हें दे दी, संसार के सामने जाओ, यदि मैंने तुम्हें बनाया हो तो समाप्त हो जाओ और यदि दैवी माता ने बनाया है तो जीती रहो।" यह कार्य निवेदिता का आज्ञा भंग करने का पहला उदाहरण था। इसके बाद निवेदिता एक मंत्र-मुग्ध सर्प के समान बन गईं। अब वे योरोप में अकेली रह गईं, जगदीशचंद्र बसु लंदन ही में थे। वे रॉयल सोसायटी में अपना निबंध पढ़ना चाहते थे। निवेदिता का साथ उन्हें ईश्वर का वरदान सरीखा मिला। अपने कार्य के संबंध में उन्हें उत्साह और उत्सुकता थी। निवेदिता ने रमेशचंद्र दत्त से भी संपर्क स्थापित किया और वे राजनीति में भी रस लेने लगीं। उनको अंग्रेजों के प्रति इसलिए घृणा हो गई कि वे भारतीयों के प्रति न्याय नहीं करते, केवल धर्म और शिक्षा ही उनके रुचिकर विषय हैं, किंतु राजनीति मुख्य विषय बन गया। वह भारत लौटीं तब उन्होंने स्वामी जी की बीमारी का हाल सुना।

निवेदिता को पाकर स्वामी जी बहुत प्रसन्न हुए। अपनी योग दृष्टि से उन्होंने निवेदिता की आत्मा का प्रकाश देख लिया। उस समय कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था और भारत भर के नेता एकत्रित थे। बीमारी का हाल सुनकर सब लोग उनके पास

आते और मार्गदर्शन प्राप्त करते। इस समय निवेदिता को भारतीय नेताओं से परिचय प्राप्त करने का अच्छा अवसर मिला।

अंतिम दिवस निवेदिता बैलूर गई हुई थीं। स्वामी जी ने स्वयं उन्हें भोजन परोसा और हाथ धुलाये। उनकी आँखों में अनंत प्रेम बरस रहा था। मन ही मन समझ गईं कि स्वामी जी अब विदा होने वाले हैं। दो दिन बाद स्वामी जी ने समाधि ले ली। समाचार सुनकर वे बैलूर लौटीं, उसके पहले ही वे प्रकृति में उनका अनुभव कर चुकी थीं। दिन भर वे उनके पास रहीं। उनका सिर अपनी गोद में रखकर बैठी प्रार्थना करती रहीं, प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो। अग्नि-संस्कार के समय एक अद्‌भुत घटना घटी। स्वामी जी के गेरुए वस्त्र का अधजला टुकड़ा हवा में उड़ता हुआ आया और निवेदिता की गोद में गिर पड़ा, मानो स्वामी जी का उत्तराधिकार ही उनको मिल गया।

अब निवेदिता बिल्कुल अकेली रह गई, अब उनके सामने विस्तृत कार्य क्षेत्र था। गुरु अपने अपूर्ण कार्य का भार छोड़कर विदा हो गये थे। कितनी सावधानी, कितनी कोमलता, कितनी कठोरता, कितने प्रगट और कितने प्रच्छन्न रूप से कितनी दूरी और कितने समीप से स्वामी जी ने उन्हें प्रशिक्षण दिया था ? कभी वे कठोरता धारण करने और कभी उदासीनता और कभी परमप्रिय मित्र अथवा स्नेहमय पिता के समान बर्ताव करते। जिस प्रकार कोई शिल्पी किसी मूर्ति या भवन को तोड़ता-फोड़ता, उठता-गिरता उसका निर्माण करता है, उसी प्रकार गुरु ने इस स्वतंत्रवेत्ता आधुनिक शिष्या का निर्माण किया था। आध्यात्मिकता के इतिहास में यह एक अद्‌भुत उदाहरण था।

निवेदिता अकेली थीं, किंतु असहाय नहीं। उनके विचार और व्यक्तित्त्व गुरु की शक्ति से ओत-प्रोत थे। उन्हें आदेश मिला था कि केवल भारतीय नारी जाति का उन्नयन ही नहीं, किंतु सारी जनता की सेवा और उसके साथ ही आत्म-साधना उनका कार्य है।

भगिनी निवेदिता लेखिका के रूप में—

निवेदिता ने इंगलैंड में ही बौद्ध-धर्म का अध्ययन शुरू कर दिया था। भारत में स्वामी स्वरूपानंद जी को उन्हें हिंदू शास्त्र और

बँगला पढ़ाने के लिए नियुक्त किया। जिनका बाद में उन्होंने गीता के संबंध में अपनी पुस्तक में लिखा—"इस छोटे से काव्य के विषय में जो माउंट पर दिये गये, उपदेश की लंबाई का केवल १।३ अथवा १।४ सैंट मार्क के उपदेशों से कहीं छोटा है—केवल इतना ही इस क्षण कहा जा सकता है, कि मानव रचित पवित्रतम रचनाओं में कोई भी इतनी संक्षिप्त एवं महान् नहीं है, परंतु वह केवल वैष्णवों की संपत्ति नहीं, वरन् कश्मीर से कन्याकुमारी तक व्याप्त समस्त धार्मिक विचारों की आधार भूमिका है—"वेव ऑफ इंडियन लाइफ"।

देश-दर्शन की यात्रा के संबंध में उन्होंने अपनी "पुस्तक नोट्स ऑन सम वांडरिंग विद स्वामी विवेकानंद" में लिखा है—"अल्मोड़ा से मुझे अनुभव होने लगा कि मानो मेरा स्कूल जाना आरंभ हो गया है! ठीक इसी भाँति जैसे किसी छात्र को विद्यालय जाना अटपटा लगता है। यहाँ भी मुझे कष्ट की अनुभूति हुई, परंतु दृष्टि का अंधापन तो नष्ट होना ही चाहिए।"

तीर्थ-यात्रा के अंत में उन्होंने एक पत्र में लिखा—"मुझे दिखाई पड़ता है कि मैं देवात्मा द्वारा उन्मुक्त कर दी गई तथा मुझे अनुभव होता है कि किसी विचित्र ढंग से ही क्यों न हो, इस तीर्थ-यात्रा के परिणामस्वरूप मैं उनके (स्वामी) तथा भगवान् के अधिक निकट पहुँच गई हूँ।"

स्वामी जी ने उन्हें शक्ति-साधना की ओर आकर्षित किया। कश्मीर में क्षीरभवानी की उपासना के बाद जो परिवर्तन हुआ, उसके संबंध में निवेदिता ने लिखा—

"आज उनकी भाव-भंगिमा में आमूलचूल परिवर्तन था। शांतिपूर्वक वे हम सभी के पास से आशीर्वाद देते हुए, हमारे सिरों पर सुनहरे पुष्प रखते हुए चले गये। हममें से एक को पुष्पहार भेंट करते हुए उन्होंने कहा—"मैंने इनको माँ के चरणों में समर्पित कर दिया है।" कहने की आवश्यकता नहीं कि—यह "एक" निश्चय ही निवेदिता स्वयं ही थीं।"

शिक्षा के संबंध में उन्होंने लिखा—"आधुनिक का राष्ट्रीयकरण तथा पुरातन का आधुनिकीकरण और वह भी इस ढंग से कि इसमें सकल का दर्शन हो सके, यही उनकी सुलझन थी......।" स्वामी जी

इस विचार-विमर्श में विशेष रुचि लेते थे। इन हरिकल्पनाओं के संबंध में वे घंटों विचार करते थे। इसी सागर मंथन का परिणाम थी भगिनी निवेदिता की पुस्तक—"हिंट्स ऑन ऐजूकेशन इन इंडिया" जो इसी चर्चा का निष्कर्षण मात्र ही कही जा सकती है।

बैलूरमठ के लिए धन संग्रह करने के हेतु जब स्वामी जी ने कार्यक्रम बनाया, तब निवेदिता को भी साथ ले जाना अनिवार्य हो गया। समुद्र यात्रा करते समय स्वामी जी से जो चर्चाएँ होती रहीं, उनके बीच वे अनेक उपाख्या भी कहा करते थे। उनको अपनी भाषा में लिखकर निवेदिता ने एक पुस्तक भी तैयार कर दी, जो कि "क्रेडिल टेल्स ऑफ हिंदूइज्म" के नाम से विख्यात हुई। साथ ही डॉ० जगदीशचंद्र बसु की प्रसिद्ध पुस्तक "लिविंग एंड नॉन लिविंग" का संपादन किया।

बंगाल में क्रांतिकारी जीवन के संबंध में उन्होंने एक पुस्तक लिखी—"ऐग्रेसिव हिंदूइज्म", इसमें उन्होंने लिखा—"हमारा कार्य अब केवल रक्षा करना नहीं, बल्कि दूसरों को परिवर्तित करना है। एक-एक करके जो कुछ हमारे पास था, उसका रक्षण नहीं, वरन् जो हमारे पास कभी नहीं था, उसको भी विजित करने का हमारा दृढ़ निश्चय है। प्रश्न यह नहीं कि दूसरे हमारे विषय में क्या सोचेंगे, वरन् यह कि हम दूसरों के विषय में क्या सोचते हैं ? क्या हमने सुरक्षित रखा है, यह विचारणीय नहीं है, वरन् यह कि क्या हमने छीनकर प्राप्त किया है ? अब हम शरणागति की कल्पना नहीं कर सकते हैं, क्योंकि संघर्ष हमारी विजय का प्रथम चरण बन गया है।"

उन्होंने नार्वे देश में एकांत वास करके ईसाई मिशनरियों के विरुद्ध "लैंब एमंग वोल्वज" पुस्तक लिखी तथा दूसरी पुस्तक "वेव ऑफ इंडियन लाइफ" लिखने का प्रयास किया।

स्वामी स्वरूपानंद के आकस्मिक निधन के कारण "प्रबुद्ध भारत" के संपादकीय लेख लिखने का भार निवेदिता पर आ पड़ा। श्री अरविंद का "युगांतर" भी निवेदिता के सहयोग से चल रहा था। उनके "वंदे मातरम्" पत्र में भी निवेदिता के लेख नियमित रूप से निकलते थे। मद्रास के श्री तेरूमलाचार्य ने भी अपने पत्र "बाल-भारती" के संचालन का आग्रह निवेदिता से किया था, किंतु वे

उसे स्वीकार न कर सकीं। इस प्रकार पत्रकारिता के क्षेत्र में भी निवेदिता ने काफी यश प्राप्त कर लिया था। यहाँ तक कि श्री रामानंद चटर्जी उन्हें गुरु मानते थे।

उड़ीसा के अकाल निवारण में अथक परिश्रम करने के कारण निवेदिता बहुत बीमार पड़ गई थीं, किंतु थोड़ा स्वस्थ होने पर उन्होंने अपनी लेखनी चलाना प्रारंभ कर दिया। "दी मास्टर एज आई सॉ हिम" तथा "क्रैडिल टेल्स ऑफ हिंदूइज्म" नामक प्रसिद्ध पुस्तकें उनकी इसी काल की देन है। इसी के साथ श्री जगदीशचंद्र की दूसरी पुस्तक "कंपेरेटिव इलेक्ट्रिक फिजिओलॉजी" का संपादन भी उन्होंने किया। इसके बाद लंदन की रॉयल सोसायटी के पत्र "ऐग्रेसिव हिंदूइज्म" में उनके लेखों में संबंधित लेख पुस्तकाकार रूप ग्रहण कर सके।

श्री अरविंद के पांडिचेरी जाने के बाद उनके चलाये हुए पत्रों के संपादन का भार भी निवेदिता के ऊपर आ पड़ा। इतना ही नहीं, किंतु श्री अरविंद के नाम से उन्हीं के लेख उनमें छपने लगे, जिससे लोगों को उनका अभाव नहीं खटकने पाया। भगिनी निवेदिता का एक और महान् कार्य भारतीय कला का उन्नयन था। उन्होंने सर्व प्रथम भारतीय चित्रकला के मौलिक तत्त्वों के पुनरुज्जीवन की आवश्यकता अनुभव कर उस दिशा में प्रयास किया। वे उस समय के प्रसिद्ध चित्रकारों को बराबर प्रोत्साहित करती रहती थीं।

उनकी साहित्य साधना बराबर चलती रहती थी। अपनी यात्राओं का वर्णन भी बड़े भावपूर्ण शब्दों में वे करती थीं। अपनी पुस्तक "केदारनाथ और बद्रीनारायण" में उन्होंने अपनी यात्रा का सजीव वर्णन किया है। अपने गुरु के प्रति अपने अंतिम कर्तव्य का पालन उन्होंने स्वामी जी से संबंधित पत्रों, भाषणों, लेखों आदि का संकलन कर किया, जो कि "लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानंद बाइ हिज ईस्टर्न एंड वेस्टर्न डिसाइपल्स" में संग्रहीत है।

सन् १९११ में जबकि वे क्रियात्मक जीवन से विराम ले चुकी थीं तब भी उन्होंने अपनी लेखनी को विश्राम नहीं दिया और अपनी शेष पुस्तकें "फुटफॉल ऑफ इंडियन हिस्ट्री" तथा "स्टडीज फ्रॉम

ऐन ईस्टर्न होम" को निमग्न रहती थीं, इसके अतिरिक्त इसी समय रामकृष्ण वचनामृत को भी संकलित कर डाला।

स्वतंत्रता आंदोलन में अग्रणी निवेदिता—

निवेदिता का उदय धार्मिक पृष्ठभूमि में हुआ था, किंतु उन्होंने भारतीयों को धर्म और उनकी प्रसुप्त आध्यात्मिकता के लिए कुछ करने से पूर्व वातावरण को दुरुस्त करना अधिक उचित समझा। आवश्यकता इस बात की थी कि पहले भारतीय अपने स्वाभिमान को समझें, उनमें शिक्षा और संस्कृति का विस्तार हो। उनमें विचार आएँ, संकल्प जाग्रत् हों, पर इसमें प्रमुख बाधा थी—वह थी राजनैतिक पराधीनता। इसलिए भारतवर्ष को स्वतंत्र करना ही उस समय उनका मुख्य उद्देश्य बन गया और वे उसी में पूरी तरह व्यस्त हो गईं। यह ठीक भी था, जो उत्तरदायित्व सामने हो उसे ही ठीक तरह पूरा कर लें, तो एक महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न हो जाने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। इसके बाद उन्होंने राजनीति में क्षेत्र में प्रवेश किया और स्वतंत्रता के आंदोलन में भाग लिया और भारत में यात्रा करना प्रारंभ किया। क्रांतिकारियों से संपर्क स्थापित करतीं। धार्मिक मिशन छोड़कर उन्होंने राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की साधना प्रारंभ की।

नेविन्सन ने लिखा—"वह भारतीयता से अप्लावित थे।" स्वामी ब्रह्मानंद ने कहा—"विवेकानंद के सिवा किसी व्यक्ति ने भारत को प्यार नहीं किया।" रवींद्रनाथ ने कहा—"मैं निवेदिता को जनता की माता के रूप में देखता हूँ।" अनेक रूप से उन्होंने हमारी सुप्त आत्मा को जगाया। स्वयं स्वामी जी उन्हें राष्ट्रीयता के जागरण के लिए अपना समर्पण अन्य साधकों को मना किया था कि निवेदिता की स्वतंत्रता में बाधा न दें।

हम देखते हैं कि कभी वे नरम दिल वालों के साथ हैं तो कभी राष्ट्रवादियों के साथ, कभी युवकों का साथ दे रही हैं तो कभी पत्रकारों का। कभी स्वदेशी का प्रचार कर रही हैं तो कभी अकाल पीड़ितों की सहायता कर रही हैं। कभी वैज्ञानिकों के साथ अनुसंधान में लीन हैं तो कभी अभावग्रस्त कलाकारों की सहायता कर रही हैं। कभी साहित्यिक आंदोलन चला रही हैं तो कभी सांस्कृतिक। वे स्वयं

एक संस्था बन गई थीं। उनकी अक्षय प्राण-शक्ति, आत्म-विस्तारक व्यक्तित्त्व आश्चर्यचकित करने वाला था। जान पड़ता था कि उन्होंने स्वामी के साथ तपस्या कर, जो आध्यात्मिक शक्ति अर्जित की थी और जो अभी तक रुद्ध थी वह अचानक प्रवाहित हो गई है।

गुप्त समितियों के साथ इनका संपर्क लोगों को आश्चर्य में डाल देता है। इस कार्य के लिए उन्होंने सारे भारत में यात्रा की। जब वे बड़ोदा आईं तो उनकी श्री अरविंद से भेंट हुई। वे भी उस समय गुप्त समितियों के संगठन में लगे थे। दोनों एक-दूसरे से परिचित थे। श्री अरविंद ने निवेदिता की पुस्तक "माँ काली" पढ़ी थी और निवेदिता ने श्री अरविंद के लेख "इंदु प्रकाश" आदि पत्रों में पढ़े थे। निवेदिता ने सीधा प्रश्न किया—क्या आप काली के उपासक हैं ? अर्थात् क्या क्रांति में विश्वास करते हैं। गायकवाड़ से भी उन्होंने क्रांति में सम्मिलित होने को कहा। निवेदिता खुले आम क्रांति का प्रचार करती-फिरती थीं। उन्होंने श्री अरविंद से भी बंगाल चलने को कहा, किंतु उन्होंने उत्तर दिया—"अभी समय नहीं आया, मैं क्षेत्र तैयार कर रहा हूँ।"

उसके बाद निवेदिता ने श्री अरविंद के राजनैतिक आंदोलन को आगे बढ़ाना प्रारंभ कर दिया। श्री अरविंद में उन्होंने विवेकानंद की छाया देखी। श्री अरविंद भी राष्ट्रीयता को अपना धर्म समझते थे। इसलिए दोनों एक दूसरे के समीप आकर सहयोगी बन गए। निवेदिता पूरी तौर से क्रांतिकारी थीं। क्रांति ही उनका स्वधर्म बन गया था। "माँ काली" पुस्तक में उन्होंने बड़े खुले शब्दों में रक्तमय क्रांति का प्रतिपादन किया है।

किंतु आंतरिक रूप से निवेदिता एक योगिनी, साधिका और कला-प्रेमी थी। स्टेशन से जाते समय धर्मशाला के भवन को देखकर वे कह उठीं—कितनी सुंदर है ? और जब कॉलेज के भवन को देखा तो बोलीं—कितना भद्दा है ? इन्हीं परस्पर विरोधी गुणों का मिश्रण होने के कारण बड़े-बूड़े लोग भी निवेदिता को नहीं समझ पाए। श्री अरविंद ने उन्हें अच्छी तरह समझा था। एक दिन जब लोगों ने किसी क्रांतिकारी नेता के विषय में कहा कि, वे तो क्रांतिकारी थे, तब श्री अरविंद चुप रहे, किंतु जब निवेदिता की चर्चा आई तब वे बोल

उठे—हाँ वे जरूर अग्निस्वरूपा थीं। विवेकानंद ने उन्हें सचमुच सिंहनी बना दिया था। साथ ही उनका सौंदर्य भी अप्रतिम था। जहाँ भी वे जातीं लोग उनके शक्तिमय सौंदर्य और प्रतिभा से प्रभावित हो जाते थे। उनके पवित्र सौंदर्य के सामने बड़े-बड़े दरबारों और शासकीय भवनों की सज्जित सुंदरियाँ भी लज्जित हो जाती थीं। उनका सौंदर्य पार्थिव न था, वरन् साधना एवं संयम की तेजस्विता दमदमाती थी। उस पर ज्ञान और वाणी के ओजस् ने मिलकर व्यक्तित्त्व को निखारा। वे कुछ ऐसी बन गईं कि, वे जहाँ गईं—वहीं लोगों ने प्रकाश की प्रेरणा पाई।

इसके साथ ही वे जितनी नम्र और कोमल थीं—सिद्धांतों के प्रति उतनी ही कठोर थीं। वे भारतीय युवकों से कहती थीं—इंगलैंड बमों की भाषा ही समझता है। तुम्हारी मिट्टी ने कितने ही वीरों को पैदा किया है। उन्हीं के समान तुम भी युद्ध करो। क्रांतिकारी जब कारागार में बंद थे, तब वे उनकी स्त्री और बच्चों को देखकर करुणा से द्रवित हो जाती थीं और उनको अपना सब पैसा दे डालती थीं। इन सब कार्यों के कारण वे शासन की कुदृष्टि से नहीं बच पाई थीं, किन्तु वे न तो किसी शासन के भय से भयभीत होती थीं और न किसी की कृपा से द्रवित। परमात्मा को पाकर किसी को संसार से भय क्यों होने लगा ?

एक ओर युगांतर और वंदे मातरम् में श्री अरविंद के क्रांतिकारी लेख और दूसरी ओर निवेदिता के आग उगलने वाले भाषण, दोनों ने मिलकर बंगाल ही नहीं समग्र भारत को उत्तेजित कर दिया था। इसके कारण बहुत से निकट मित्रों से उनका मतभेद भी हो गया, किंतु देश के लिए इसकी कोई परवाह न की। वे युवकों को जगदीश बसु और प्रफुल्लराय के पास बम बनाना सीखने तथा विदेशों से अस्त्र-शस्त्र संग्रह को भेजती रहीं तथा इधर शासन का दमन-चक्र भी तीव्र गति से चलता रहा। श्री अरविंद इस समय जेल में थे, किंतु शासन की इच्छा थी कि बाहर निकलते ही उन्हें फिर से गिरफ्तार कर लिया जाए। इसका पता जैसे ही निवेदिता को चला तो इन्होंने उनको चंद्रनगर जाने की सलाह दी। श्री अरविंद को भी ईश्वरीय आदेश मिल गया था और वे कर्मयोगी का भार निवेदिता पर

छोड़कर वहाँ चले गये। श्री अरविंद के इस प्रकार विदेश जाने के कारण क्रांतिकारी आंदोलन भी धीरे-धीरे शांत हो गया। निवेदिता में भी अब वह उत्साह नहीं रहा, उनमें भी अपने गुरु के समान स्वतंत्रता की अवैयक्तिक भावना उदय हो गई। उन्होंने भी आंदोलन से अलग होकर अपनी आत्मा के मंदिर में प्रवेश किया।

ब्रिटिश शासन के दुष्कृत्यों एवं स्वाधीनता की लहर के कारण १९०५ के प्रारंभिक दिनों में ही बंगाल की स्थिति एक सुप्त ज्वालामुखी की भाँति हो गई थी। तत्कालीन वाइसराय की उद्दंडता ने उस ज्वाला में घी डालने का काम किया था। कलकत्ता नगरपालिका व विश्वविद्यालय में बिल का उग्र विरोध चल रहा था। ऐसे ही काल में ११ फरवरी सन् १९०५ को कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में लार्ड कर्जन स्वयं पधारने वाले थे। हठवादी वाइसराय ने अपने क्रोध को व्यक्त करने का यह अच्छा अवसर ढूँढ़ निकाला। अत्यंत असभ्य-अपमानजनक भाषा में स्नातकों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा—पश्चिम देश की तुलना में शारीरिक, बौद्धिक अथवा नैतिक दृष्टि से यदि पूर्व की प्रमुख विशेषता को यदि मुझे एक ही शब्द में कहना पड़े तो मुझे उसके लिए गप्प मारना या डींग मारना शब्द को ही प्रयोग में लाना होगा। यह देशी प्रेस के लिए और भी अधिक उपयुक्त है।"

विशाल मंडप में न्यायाधीश बनर्जी के निकट बैठीं निवेदिता धर्मप्रधान भारतीय जन-जीवन पर असत्यवादिता के भीषण आरोप को सुनकर क्रोध से आग-बबूला हो उठीं। यह असहनीय था। कार्यक्रम समाप्त होते ही बाहर आकर झल्लाकर वे बोल उठीं—"मैं सिद्ध कर दूँगी कि लार्ड कर्जन स्वयं झूठा व्यक्ति है।" विद्वत् मंडली उनके तमतमाये हुए चेहरे को चकित होकर देख रही थी, किंतु न्यायाधीश महोदय को विश्वास था कि तथ्यों के आधार पर बोलना निवेदिता का स्वभाव है। भगिनी उसी क्षण न्यायाधीश महोदय को लेकर इंपीरियल लाइब्रेरी में गईं तथा अलमारी में ढूँढ़कर एक पुस्तक निकाली और एक पृष्ठ खोलकर न्यायाधीश महोदय के हाथों पर रख दिया। श्रीयुत बनर्जी महोदय के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जब उन्होंने देखा कि उक्त पुस्तक "प्रॉब्लम्स ऑफ फार ईस्ट"

के लेखक लार्ड कर्जन स्वयं थे तथा उक्त पृष्ठ पर एक घटना का उल्लेख किया हुआ था, जिसमें उन्होंने जान-बूझकर झूठ बोला था। मन ही मन न्यायाधीश महोदय भगिनी के प्रकांड पांडित्य पर चकित थे। आज भगिनी में उन्होंने एक वीरांगना के दर्शन किए थे। दूसरे दिन अमृत बाजार पत्रिका में लार्ड कर्जन की पोल खोलते हुए "झूठा कौन" शीर्षक संपादकीय प्रकाशित हुआ, जिसकी प्रेरणा भगिनी निवेदिता ने ही दी थी। इससे जनता की दृष्टि में लार्ड कर्जन झूठे साबित हो गये।

बंग-भंग के आंदोलन में भगिनी निवेदिता ने अस्वस्थ होने पर भी खुलकर भाग लिया। इस विषय की प्रथम सभा में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—"हम अपने संघर्ष को उस समय तक जारी रखेंगे जब तक कि भारतीय वीरों के बलिदान, बंग-भंग की इस अपमानजनक दीवार को तोड़कर हमारे प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए अंग्रेजों को बाध्य न कर लेंगे।

स्वदेशी के बारे में आपने एक बार कहा था कि—"एक समय आवेगा जब जो वस्तु स्वदेश में प्राप्त होती है, उसे विदेश से खरीदने वालों की गणना गौ हत्यारों में की जायेगी क्योंकि दोनों अपराध नैतिक दृष्टि से समान प्रतीत होते हैं।"

निवेदिता ने कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर बड़े परिश्रम के साथ स्वदेशी प्रदर्शनी का आयोजन किया था। जिसमें स्वदेशी हस्तकला के बहुत से संग्रहीत किये गये थे। इसी अवसर पर उन्होंने राष्ट्रीय झंडे का एक रूप प्रस्तुत किया था। उसमें भगवे रंग के ऊपर वज्र का चिह्न अंकित किया था। राष्ट्रीय-पताका का यह प्रारंभिक रूप था जो कि विकसित होते हुए वर्तमान रूप में आया।

सन् १९०५ की कांग्रेस के अध्यक्ष श्री गोखले ने भगिनी निवेदिता को विशेष रूप से आमंत्रित किया था। उस समय विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रस्ताव विशेष रूप से विचारणीय था, किंतु गोखले जी की अनुमति से निवेदिता को उस समय अनुपस्थित रहना पड़ा। वे प्रारंभ ही से क्रांतिकारी मनोवृत्ति की थीं। अतः उन्हें कांग्रेस की शांतिपूर्ण नीति पसंद नहीं थी। देश भक्ति की प्रेरणा

ग्रहण करने के लिए उन्होंने राजस्थान की यात्रा की और वीरों के बलिदान स्थलों पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पण की।

क्रांतिकारी आंदोलन पर शासन का दमन-चक्र जोरों से चल रहा था, किंतु निवेदिता का निवास स्थान उन सबके लिए आश्रय स्थान बन रहा था। उन्होंने न केवल क्रांतिकारियों को क्रांति की दीक्षा दी थी किंतु अनेक क्रांतिकारियों को बम बनाने तक की शिक्षा दी थी। कई तरुणों को तो उन्होंने इसी निमित्त विदेशों में भेजा था। जब भूपेंद्रनाथ दत्त (स्वामी जी के भाई) पर दस हजार का दंड किया गया तब निवेदिता ही उसे चुकाने में सहायक हुईं।

सन् १९०७ में निवेदिता ने फिर इंगलैंड की यात्रा की और वहाँ अपने परिवार वालों से पाँच वर्ष बाद मिलने पर भी अपने लेखन-कार्य को जारी रखने के साथ ही संसद के प्रमुख सदस्यों से मिलकर उन्हें भारत का समर्थक बनाया। इतना ही नहीं किंतु वहाँ के प्रमुख पत्र-संपादकों को भी भारत के पक्ष में लिखने को प्रेरित किया। इससे भी संतुष्ट न होकर उन्होंने पेरिस से "इंडियन नेशनलिस्ट" बर्लिन से "तलवार" तथा जिनेवा से "वंदे मातरम्" पत्रों के प्रकाशन की प्रेरणा दी।

इसके बाद उन्होंने अमेरिका में तीन मास निवास कर प्रमुख नगरों की यात्रा की। विशेष राजनैतिकों और पत्रकारों से मिलकर उन्होंने भारत का समर्थन करवाया। अमेरिका प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों से भेंट कर उनके लिए चंद्रनगर में निवास करने की व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त अपने विद्यालय के लिए धन संग्रह और स्वामी जी के पत्रों को एकत्र करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भारत के आंदोलन का उन्हें सदा ध्यान रहता था। अपनी मरणासन्न माता के दर्शन करने के लिए वे १९०९ में विलायत लौटीं, किंतु उसी वर्ष जुलाई में भारत के लिए प्रस्थान कर दिया। यहाँ भारत में कई क्रांतिकारी हत्याएँ हो चुकी थीं और क्रांतिकारी जेलों में सड़ रहे थे। उनकी सेवा और सुरक्षा के लिए निवेदिता ने अपने बंधु-बांधवों का मोह भी त्याग दिया।

अमेरिका की श्रीमती बुल स्वामी जी की अन्यतम शिष्याओं में से थीं। उन्हीं की सहायता से बैलूर मठ, निवेदिता बालिका विद्यालय

तथा बोस अनुसंधान संस्था स्थापित की जा सकी थीं। उनको स्वामी जी धीरा माता कहा करते थे। इनकी बीमारी का समाचार पाकर निवेदिता सन् १९१० में बोस्टन नगर पहुँचीं और उन्होंने उनकी अथक सेवा की, किंतु वे उन्हें मृत्यु के मुख से न बचा सकीं। उसके पहले वे अपनी प्रिय संस्थाओं को सहस्रों पौंड अपनी वसीयतनामे के द्वारा दान कर गई थीं। वहाँ से लौटकर निवेदिता ने भी अपने कार्य से विश्राम ले लिया। उनके देखते ही एक के बाद एक स्वामी जी के सभी साथी उन्हें छोड़ते चले जा रहे थे। उन्होंने भी जलवायु परिवर्तन के लिए दार्जलिंग की ओर प्रस्थान किया। वहाँ वे स्वास्थ्य लाभ न कर सकीं। धीरे-धीरे उनकी हालत बिगड़ती ही गई। मृत्यु के ४ दिन पूर्व उन्होंने एक बड़ा मार्मिक लेख लिखा, जिससे आगामी घटना का स्पष्ट पता लगता है। उनके मुख से अंतिम प्रार्थना निकली—

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय। (बृह० उप० १.३.२८)

मृत्यु के पूर्व उन्होंने अपनी डायरी में ये चिरस्मरणीय शब्द लिखे—"मेरा प्रियतम, वह चिरानंद सर्व प्रिय है, जो इस खिड़की से झाँक रहा है, जो इस द्वार को खटखटा रहा है।" "ओ प्रियतम ! मेरा सार सर्वस्व तुम्हारा ही है।"

तेरह अक्टूबर को उनका प्रयाण दिवस आ गया। बैलूरमठ से श्री गानेन महाराज प्रसाद लेकर पहुँच गये। मानो निवेदिता के प्राण इसी के लिए अटके थे। प्रसाद पाने के बाद वे बोल पड़ीं—"टूटी नाव अब डूब रही है, परंतु मेरा विश्वास है कि उदय होते ही दर्शन अवश्य करूँगी।" और वह दिव्य वाणी सदैव के लिए मूक हो गई।

सारे देश में इस समाचार के साथ शोक छा गया। बड़े समारोह के साथ उनका अंतिम-संस्कार संपन्न हुआ। उनकी समाधि पर ये शब्द अंकित हैं—

"यहाँ चिर शांति में लीन हैं—भगिनी निवेदिता"— जिन्होंने भारत के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर दिया।

एक बार किसी ने श्री अरविंद से पूछा कि—निवेदिता ने अपना आध्यात्मिक कार्य छोड़कर क्रांतिकारी आंदोलन में क्यों प्रवेश किया ? श्री अरविंद ने उत्तर दिया—अपने गुरु के आदेश से। निवेदिता की आध्यात्मिक साधना के विषय में पूछने पर उन्होंने कहा—"उनमें समाधि लगाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति थी।"

आज चाहे भारत भले ही निवेदिता को भुला दे, किंतु उनका अक्षय ऋण भारत के धर्म, राजनीति, शिक्षा नीति और समाज सुधार के क्षेत्र में सदा अमर रहेगा। विवेकानंद के आदर्श के अनुसार एक दिन भारत फिर से संसार के गुरु का स्थान ग्रहण करेगा। निवेदिता की प्रेरणा से उनके गुरु को दी हुई शक्ति से भारत की सुप्त कुंडलनी शक्ति जाग्रत् हो गई। उन्होंने शिक्षा की नवीन पद्धति का प्रयोग किया, नारी जागरण को बल दिया, भारतीय चित्रकला तथा हस्तकलाओं के क्षेत्र भर में योगदान दिया, पत्रकारिता को नई दिशा दी, विदेशों को भारतीय संस्कृति का परिचय दिया तथा भारत को भक्तिपूर्ण दिव्य वाणी से माँ काली के स्वरूप का ज्ञान कराया। स्वतंत्रता आंदोलन को नवीन शक्ति प्रदान की तथा अपनी लेखनी से अपार साहित्य का सृजन किया। इन कारणों से संसार में वे सदा अविस्मरणीय रहेंगी।

इस संदर्भ में रवींद्रनाथ ठाकुर का एक चित्र सामने आता है, उसमें भारत माता के हृदय में निवेदिता खड़ी हैं। उनके सिर पर विवेकानंद हैं और उनके ऊपर ध्यान मग्न रामकृष्ण हैं। निवेदिता के दोनों ओर जगदीश बोस और एक ओर स्वयं अवनींद्रनाथ हैं और एक ओर रामानंद, मोतीलाल, तिलक तथा गोखले आदि नेता हैं। यह चित्र प्रतीकात्मक है।

निवेदिता के संबंध में श्री अरविंद का एक वाक्य उद्धृत है—भगिनी निवेदिता के प्रति हमारे ऋण का कोई अंत नहीं है।"

भगिनी निवेदिता अपने समय के जिन-जिन महापुरुषों के संपर्क में आईं। उन सभी ने उनके प्रति उच्च भाव प्रगट किये हैं। श्री रवींद्रनाथ ठाकुर ने लिखा—"वास्तव में निवेदिता जगत् जननी थीं। हमने शायद ही कभी इतने मातृ स्नेह के दर्शन किये होंगे, जो अपने परिवार क्षेत्र से बाहर एक संपूर्ण देश को आत्मसात् कर

सकता हो।" श्री विपिनचंद्र पाल ने कहा था—"वे हमारे मध्य आत्म-समर्पण के भाव से प्रेरित होकर आई थीं।" श्री यदुनाथ सरकार के शब्दों में—"राष्ट्रवादियों में वे अग्रगण्य थीं।" श्री मोतीलाल बोस ने लिखा है—"वे दग्ध मानवता को सुख प्रदान करने के लिए मानव रूप में एक देवी थीं।" श्री दिनेशचंद्र सेन ने लिखा है—"निःस्पृही व्यक्तित्व का केवल आज ही मैं दर्शन कर सका हूँ।"

प्रसिद्ध दार्शनिक रोम्याँरोलाँ ने उनके संबंध में लिखा था—"जिस प्रकार सैंट क्लारा का नाम सैंटफ्रांसिस से जुड़ा है, इसी प्रकार दक्षिणेश्वर की काली के साथ विवेकानंद का तथा उनके साथ भगिनी निवेदिता का नाम सदैव जुड़ा रहेगा।"

मानवमात्र से आत्मीयता की भावना, सेवा-धर्म की सर्वोपरिता और परोपकार के महान् आदर्श की प्रेरणा तो हम भगिनी निवेदिता के चरित्र से ग्रहण कर ही सकते हैं, पर उनकी एक बड़ी शिक्षा जिसकी तरफ अभी तक हमने थोड़ा ही ध्यान दिया है—यह है कि भारतीय नारी को ऊँचा उठने के लिए उचित अवसर और सुयोग्य प्रदान किया जाय। नारी क्या कर सकती है ? इसका एक बहुत बड़ा और अकाट्य उदाहरण उन्होंने अपने चरित्र और कार्यों से दिखाया। धार्मिक, शिक्षा संबंधी, कला संबंधी, राजनैतिक, आध्यात्मिक—सभी क्षेत्रों में उन्होंने ऐसा काम कर दिखाया, जिसकी तुलना सुप्रसिद्ध पुरुष कार्यकर्ता भी बहुत कम कर सकते हैं। इस पर भी उनके सामने एक अपरिचित समाज, विदेशी भाषा, भिन्न जलवायु और सर्वथा भिन्न वातावरण आदि की अनेकों बाधाएँ थीं। बहुत बड़े योग्य और शक्ति-साधन संपन्न व्यक्ति भी ऐसी विपरीत परिस्थितियों में बहुत कम ठहर पाते हैं। पर भगिनी निवेदिता ने एक बार निश्चय करके जिस मार्ग को एक बार अपनाया, उस पर वे जीवन के अंत तक स्थिर रहीं और इतना ठोस काम कर दिखाया कि जिसको कभी भुलाया नहीं जा सकता।

उनका उदाहरण भारतीय नारियों के लिए निश्चय ही अत्यंत प्रेरणादायक है। जब एक ओर हम भगिनी निवेदिता के सार्वभौम एकता और दूर देश वालों के हितार्थ तन, मन, धन को समर्पण कर

देने की सर्वोत्कृष्ट मनोवृत्ति को देखते हैं और दूसरी ओर अपने यहाँ की शिक्षित कहलाने वाली नारियों की संकीर्णता, अपने-पराये की हीन भावना, अंधपरंपराओं तथा रूढ़ियों का अनुगमन आदि पर ध्यान देते हैं तो एक असंतोष का भाव स्वयंमेव उत्पन्न होता है। यहाँ की स्त्रियों ने तो शिक्षा पाकर अगर कुछ सीखा भी है तो विदेशी फैशन और श्रृंगार-प्रसाधन आदि की नकल करना ही सीखा है। उनके गुणों की तरफ उनकी दृष्टि नहीं जाती। इंगलैंड निवासी एक नारी ने सैकड़ों विघ्न-बाधाओं के होते हुए भारतवर्ष में आकर कितने बड़े-बड़े काम कर दिखाए, इसे सुन और समझकर अगर भारतीय नारियों में से भी कुछ आगे आवें और समाज के दोषों का निराकरण करके कुछ रचनात्मक कार्य द्वारा देश को ऊपर उठाने के लिए परिश्रम करें तो यह भगिनी निवेदिता के प्रति वास्तव में उनकी एक सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

❑ ❑

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :

ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें : http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' के उद्‌घोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्‌बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्‌भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।